वन्दना ।

दोहा ।

मम मति नित प्रेरत रुचिर भासत प्रज्ञारूप ॥
भजत भक्ति हित उस पराविद्या ब्रह्मस्वरूप ॥ १ ॥
आत्मबोध भाषा करत निज उर हेत प्रमोद ॥
भजत बोधमय ब्रह्म जो विलसत करत विनोद ॥ २ ॥
जो मन बुधि वाणी अगम निगम न पावत पार ॥
सोइ मम उर विलसत सदा करत कलोल अपार ॥ ३ ॥
अहो भारती मम हृदय वसहु सदा अस होय ॥
तव स्वरूप रत नित मगन अपर न जानहुँ कोय ॥ ४ ॥

कृरुणा करि करुणा करिय ब्रह्मरूपिणी बुद्धि ॥
संतचित सुख अनुराग में यहि तनु पावहुँ शुद्धि ॥५॥
पढ़त सुनत यहि ग्रन्थ के ब्रह्मभाव अस आव ॥
क्रमक्रमसे परमात्मसुखअधिकअधिकअधिकाव ॥६॥
बहु जन्मन के कर्म की होयँ वासना दूर ॥
मिटहिं तापत्रय होय अस अतिपुरुषारथ पूर ॥७॥

सूर्यदीन शुक्ल

श्रीआत्मबोध

श्रीमच्छंकराचार्यप्रणीत

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥
बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ॥
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिध्यति ॥ २ ॥

यह आत्मबोध विधि कहत चहत हैं जासू ॥
तप से हतअघ शमरत विरागि जिज्ञासू ॥ १ ॥
दूसर साधन से ज्ञानहि इक साधन अस ॥
बिन ज्ञान मोक्ष नहिं सिद्ध पाक पावक जस ॥ २ ॥

षट् सम्पत्ति आदि तप से पापविहीन, शान्तचित्त, वैराग्यवान्, मुमुक्षु पुरुषों को आवश्यक यह आत्मबोध विधिपूर्वक वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ दूसरे साधनों से ज्ञानही एक स्वयं मोक्ष का साधन है बिना ज्ञान मोक्ष नहीं सिद्ध होता है जैसे बिना अग्नि रसोई ॥ २ ॥

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत् ॥
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥
परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः ॥
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ४ ॥

नहिं हरत कर्म अज्ञान विरोध न तैसे ॥
अज्ञान ज्ञानही हरत तेज तम जैसे ॥ ३ ॥
आत्मा अबोध से छिन्न एक उस नाशत ॥
जैसे टरत मेघ के भानु आपही काशत ॥ ४ ॥

विरोध न रखने से कर्म अज्ञान को नहीं दूर करसक्ता ज्ञानही अज्ञान को नाश करता है जैसे तेज बहुत अँधेरे को ॥ ३ ॥ आत्मा अज्ञान से ढका हुआ सा है उसके दूर होतेही इकल्ला अपने आप प्रकाशित होता है जैसे बादल हटने से सूर्य ॥ ४ ॥

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्विनिर्मलम् ॥
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥
संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ६ ॥

अज्ञानमलीना जीवै ज्ञान से भासंत ॥
जस नीर निर्मली आप ज्ञान करि नाशंत ॥५॥
है राग द्वेष से भरा जगत जस सोये ॥
स्वसमय सत लखंत झूठ इव बोधहि होये ॥६॥

जीवात्मा अज्ञान से मलीन है ज्ञान के अभ्यास से ही निर्मल होता है और ज्ञान को करके फिर ज्ञानाभ्यास अपने आप नाश हो जाता है जैसे जल को निर्मली ॥ ५ ॥ राग द्वेष से भरा हुआ संसार स्वप्न की बराबर ही है अपने समय में (अज्ञान दशा में संसार सोते समय स्वप्न) सच्चा सा मालूम होता है और ज्ञान होने तथा जानने पर झूठा हो जाता है ॥ ६ ॥

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा ॥
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥
सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ॥
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

जैस रजत सीपै जग सत्य लखैत है तबतक ॥
इक ब्रह्म सकल आधार न जानियै जबतक ॥ ७ ॥
सब विविध जाति बन्धन कल्पित भगवाना ॥
नित सच्चिदात्म में कनक कटकइव नाना ॥ ८ ॥

जबतक सबका आधार अद्वितीय ब्रह्म नहीं जाना जाता है तबतक संसार सत्य मालूम होता है जैसे सीप में चांदी ॥ ७ ॥ सब अनेक प्रकार के जीव नित्यस्वरूप सच्चिदानन्द भगवान् में बँधेहुए कल्पित हैं जैसे सुवर्ण में कड़े आदि ॥ ८ ॥

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ॥
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥९॥
नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः ॥
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् १० ॥

प्रभु पूरन भेद उपाधि विविधगत बहुइव ॥
भासत एकहि उसनाशत जैस सोहत चिव ॥९॥
वर्णाश्रम नाम उपाधि भेद से नाना ॥
आत्मा में कल्पित जस जल रस रँग भाना ॥१०॥

इन्द्रियों को स्वामी सर्वव्यापी परमात्मा अनेक प्रकार की उपाधियों में मिलके उनके भेद से जुदासा मालूम होता है और उन उपाधियों के नाश होतेही इकला देख पड़ता है जैसे आकाश ॥ ९ ॥ जाति आश्रम नाम आदिक अनेक प्रकार की उपाधि के वश से ही आत्मा में कल्पित हैं जैसे जल में मीठा खारी आदि रस व सफ़ेद नीला आदि रंग ॥१०॥

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसञ्चितम् ॥
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ११ ॥
पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ॥
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥ १२ ॥

पञ्चीकृत भूतज कर्म सुसञ्चित देहा ॥
यहि कहत थूल सुख दुख भोगन कर गेहा ११
तनुलिङ्ग दशेन्द्रिय मन बुधि प्राण सयोगा ॥
भवभूत अपञ्चीकृत है साधन भोगा १२

पञ्चीकरण महाभूत से उत्पन्न, कर्मों की ढेर, सुख दुःख के भोगने का घर, शरीर कहाता है ॥ ११ ॥ पाँचों प्राण मन बुद्धि दशो इन्द्रियाँ इन १७ तत्त्वों से युक्त अपञ्चीकरण महाभूत से उत्पन्न सुख दुःख आदि भोगों का साधन करनेवाला सूक्ष्म शरीर है ॥ १२ ॥

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ॥
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥
पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ॥
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा १४ ॥

मायामय अकथ अनादि कहिय तनु हेतू ॥
न्यारा उपाधित्रय आतम धरिय चित चेतू १३
शुद्धात्म कोशगत उस उसमय अस राजत ॥
जस शुभ्र फटिक नीलादि वर्ण सँग भ्राजत १४

कहने में न आनेवाला अनादि काल की माया से भरा हुआ कारण शरीर कहाता है आत्मा को इन तीनों उपाधियों से अलग समझिये ॥ १३ ॥ आत्मा निर्मल है अन्नमयादि पाँच कोशों के संयोग से उस उस धर्मवाला सा स्थित जान पड़ता है जैसे नीले आदि वर्णों के साथ स्फटिकमणि ॥ १४ ॥

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावघाततः ॥
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविंच्यात्तण्डुलं यथा ॥१५॥
तदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ॥
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् ॥ १६ ॥

जस तुषयुत तण्डुल कूटि युक्तिकरि धारिय ॥
युत कोश विमल परमातम सुचित्त विचारिय १५
सर्वगत भी आतम तदपि न सर्वउर भासत
प्रतिबिम्ब मुकुर इव स्वच्छ बुद्धि में कासंत १६

कोशों से युक्त निर्मल अन्तरात्मा को युक्ति से विचारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए जैसे कूटने स भूसी आदि से मिले हुए चावल को ॥ १५ ॥ तोभी सबमें रहता हुआ भी आत्मा सबमें नहीं मालूम होता बुद्धि में ही मालूम होता है जैसे निर्मल शीशों आदि में प्रतिबिम्ब ॥ १६ ॥

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् ॥
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा १७
व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ॥
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी १८ ॥

आतम देहेन्द्रिय मन बुधि प्रकृति विलक्षण ॥
जानिय उन साखी नित नृपसरिस विचक्षण १७
इन्द्रियरत कुमतिन आतम सरिस व्यापारी ॥
लखिये धावत वारिद जैस शशि इव चारी १८

देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृति इन सबसे विलक्षण इनके कामों का साखी आत्माको सदैव राजा के समान जानिए ॥ १७ ॥ अज्ञानियों का आत्मा इन्द्रियों के मेल होने में व्यापारी सा दिखलाई देता है जैसे दौड़ते हुए बादलों में दौड़ता सा चन्द्रमा ॥ १८ ॥

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ॥
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः १९ ॥
देहेन्द्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि ॥
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत् २० ॥

मन बुधि देहेन्द्रिय लहि चिदात्म आधारा ॥
लागत निज विषय उदित रवि जस संसारा १९
देहेन्द्रिय गुण अरु कर्म अविद्याध्यासा ॥
निर्मल चिदात्म में जस नीलिमा अकासा २०

देह इन्द्रिय मन बुद्धि ये सब चैतन्यात्मा का आसरा लेकर अपने अपने कामों में लगते हैं जैसे प्राणी सूर्योदय को ॥ १९ ॥ देह इन्द्रिय गुण कर्म ये सब निर्मल सच्चिदानन्द परमात्मा में अज्ञान से कल्पित हैं जैसे आकाश में श्यामता ॥ २० ॥

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ॥
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथाम्भसः॥२१॥
रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ॥
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः २२

जस जलगत शशि जल चलन अविद्या जल्पित ॥
मन की उपाधि कर्तृत्व आतम में कल्पित ॥ २१ ॥
बुधि रहतहि हो सुखदुख सब अरु उसनाशत ॥
नहिं रहै सुषुप्ति इससे नै आतमबुधि भासत २२

मन की उपाधि का कर्ता-भोक्तापना आदि आत्मा में अज्ञान से कल्पना किया जाता है जैसे जल का हिलना आदि जलके भीतर चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में ॥ २१ ॥ सुख दुःख इच्छा आदि राग जो कि बुद्धि में उसके होते ही रहते हैं सुषुप्ति अवस्था में उस बुद्धि के नाश हो जाने पर नहीं रहते हैं इसलिये ये बुद्धि के ही धर्म हैं आत्मा के नहीं ॥ २२ ॥

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ॥
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥
आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम् ॥
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

जैसे अनल उष्णं जल शीतं भानु रुचिभाविक ॥
सतचित सुख नित निर्मलपरमात्म स्वभाविक २३
आतम कर सत चित अंश वृत्ति बुधि नाना ॥
यह दुहुँ मिलि वश अज्ञान होत यह जानो २४

जैसे सूर्य का प्रकाशपना, जलकी शीतलता, अग्नि की उष्णता स्वभावसे है ऐसेही आत्मा का सत्य होना ज्ञान व आनन्दरूप होना सदैव रहना निर्मल होना ये स्वाभाविक हैं ॥ २३ ॥ आत्मा का सत्य चैतन्य अंश और बुद्धि के सुख दुःख इच्छा आदि काम ये दोनों मिलके अज्ञान से मैं जानता हूं सुखी हूं दुःखी हूं ऐसे व्यवहार चलते हैं ॥ २४ ॥

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ॥
जीवः स्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति २५ ॥
रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् ॥
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत् २६

आतमा के है न विकार न बुधि के ज्ञाना ॥
मल जानि जीव अस करत लखत बौराना २५ ॥
रजुअहि इव आतमहि जीव जानि डरै आनत ॥
यदि हौं न जीव परमातम न डर अस जानत २६

आत्मा के विकार नहीं है और बुद्धि के ज्ञान नहीं होता है जीवात्मा स्वं मलिनता को जानके मैं करता हूँ मैं देखता हूँ ऐसा मोहित होता है ॥ २५ ॥ रस्सी को सर्प की तरह आत्मा को जीव जानकर भय प्राप्त होता है यदि मैं जीव नहीं हूँ परमात्मा हूँ ऐसा जाने तो निर्भय होता है ॥ २६ ॥

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि च ॥
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते २७
स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः ॥
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते २८

इक आतम इन्द्रिय बुद्धि सभी को भासत ॥
दीपक घट इव वे जड़ नहिं आतम प्रकासत २७
यह आतम ज्ञानस्वरूप इसी से कोई ॥
निज ज्ञान दूसरे ज्ञान चाह नहिं होई ॥
जस दीपक अन्य प्रदीपक चाहत नाहीं ॥
तस स्वयं प्रकाशत यह आतम अपनाहीं ॥ २८ ॥

एकही आत्मा बुद्धि और इन्द्रियों को प्रकाशित करता है उन जड़ों से आत्मा नहीं प्रकाशित होता है जैसे दीपक घड़े को ॥ २७ ॥ आत्मा ज्ञानरूप होने से अपने जानने पर दूसरे के जानने की इच्छा नहीं होती जैसे दीपक को दूसरे दीपक की इच्छा नहीं होती ऐसेही आत्मा स्वयं प्रकाश करता है ॥ २८ ॥

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीति वाक्यतः ॥
विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २९ ॥
आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम् ॥
एतद्विलक्षणं विन्द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

श्रुति से उपाधि सब नेति नेति करि छेकै ॥
जानै जीवात्म परात्म तत्त्वमसि एकै ॥ २९ ॥
बुद्बुद इव क्षर देहादि दृश्य जे तत्क्षण ॥
जानै निर्मल ब्रह्महि हौं इनहिं विलक्षण ३०

नेति नेति इस वेदवाक्य से सब उपाधियों का निषेध कर तत्त्वमसि महावाक्य से जीवात्मा परमात्मा की एकता जाने ॥ २९ ॥ विद्यमान शरीर आदिक जो दिखलाई पड़ता है बुल्ले की तरह नाशवान् जाने और मैं इनसे विलक्षण निर्मल ब्रह्म हूँ ऐसा जाने ॥ ३० ॥

देहेन्यत्वान्न मे जन्मजराकार्श्यलयादयः ॥
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च ॥३१॥
अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ॥
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात् ३२ ॥

तनु जन्म जरा कृश मरण न मैं हौं न्यारो ॥
शब्दादि विषय संग नहीं इन्द्रियन पारो ३१ ॥
दुख द्वेष भयादिक राग न मम मन नाहीं ॥
नहिं प्राण न मन हौं विमल वेद अस गाहीं ३२

जन्म बुढ़ापा मरण दुबला होना आदि देह में है मुझमें नहीं है क्योंकि उससे अन्य हूं और विना-इन्द्रियवाला हूँ इससे शब्द स्पर्श आदि विषयों का संग भी मेरा नहीं है ॥ ३१ ॥ विना मनवाला होने से राग द्वेष दुःख भय आदि मुझमें नहीं हैं वेद की आज्ञा से भी मैं विना प्राण व विना मनवाला निर्मल-रूप हूँ ॥ ३२ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ३३
निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ३४

इससे होते मन प्राण व इन्द्रिय सारा ॥
नभ अनिल अनल जल धरणि धरत संसारा ३३
सत अगुण निरञ्जन अक्रिय विकल्पहि न्यारा ॥
हौं निराकार नितमुक्त विमल अविकारा ३४

इस आत्मा से प्राण, मन व सब इन्द्रियाँ आकाश, वायु, अग्नि, जल और संसार के धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥
सत, रज, तम गुणों से रहित, जाना आना आदि क्रिया से रहित, सदैव रहनेवाला, संकल्प विकल्प से रहित, माया के दोषों से रहित, जन्म आदि षट् विकारों से रहित, निराकार, सदा मुक्तरूप, निर्मल हूँ ॥ ३४ ॥

अहमाकाशवत्सर्वंबहिरन्तर्गतोऽच्युतः ॥
सदा सर्वसमः शुद्धो निस्सङ्गो निर्मलोऽचलः ३५॥
नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् ॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३६ ॥

मैं अच्युत नभ इव बाहर भीतर सबहीं ॥
नित शुद्ध विमल निस्सङ्ग अचल सम सबहीं ३५
नित शुद्ध मुक्त इक सुख अखण्ड अद्वय सत ॥
जो परब्रह्म विज्ञान अनन्तहि हौं तत ॥ ३६ ॥

मैं आकाश की नाईं सबमें बाहर भीतर रहनेवाला, नाशरहित, सदा सबमें बराबर निर्दोष, सबसे अलग, निर्मल, अचल हूं ॥ ३५ ॥ सदा स्वच्छ मुक्त एक अद्वितीय अखण्ड आनन्द जो सत्य अनन्त ज्ञानरूप परब्रह्म है वह ही मैं हूं ॥ ३६ ॥

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ॥
हरत्यविद्याविक्षेपान्रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥
विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः ॥
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

हौं ब्रह्महि नित अभ्यास वासना ऐसी ॥
नाशत अबोध विक्षेप भिषंज रुजं जैसी ३७
विनराग जितेन्द्रिय विजन सुआसन लावै ॥
यकचित उस इक आतम अनन्त को भावै ३८

ऐसी प्रतिदिन की अभ्यासवाली यह वासना कि मैं ब्रह्महीं हूं अज्ञान के विक्षेपों को दूर करती है जैसे रसायन रोगों को ॥ ३७ ॥ एकान्त स्थान में आसन पर बैठ वैराग्यवान् व जितेन्द्रिय हो एकाग्रचित्त कर उस अनन्त अद्वितीय परमात्मा का ध्यान करे ॥ ३८ ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥
नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित् ॥
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

सर्व दृश्य सुमति मति से आतमहि लयलावै ॥
नित विमल सरिस आकाश आतम इक भावै ३९
तजि नाम वर्ण आदिक सब ब्रह्मज्ञानी ॥
परिपूर्ण सच्चिदानन्द रूप रह प्रानी ॥ ४० ॥

सुन्दर बुद्धिवाला पुरुष बुद्धिसे सब दिखते हुए संसार को आत्मा में ही लीन करके सदा निर्मल आकाश की तरह एक परमात्मा का ध्यान करे ॥ ३९ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष सब नामवर्ण आदि छोड़के पूरे चैतन्यानन्द रूप से रहता है ॥ ४० ॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते ॥
चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥
एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते ॥
उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत् ॥ ४२ ॥

आत्मा में ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान है नाहीं ॥
चित सुख स्वरूप इक लसत आपही माहीं ४१
असे आत्मअराणि में नित करि मंथनध्याना ॥
गति अनल उदित सब दहत समिधअज्ञाना ४२

जाननेवाला व जानने की वस्तु और जिसके द्वारा जाना जावे ये भेद परमात्मा में नहीं हैं सच्चिदानन्दरूप होने से अपने आपही प्रकाशित होता है ॥ ४१ ॥ इस प्रकार सदा अरणिरूपी आत्मा में मथनरूपी ध्यान करने से उत्पन्न हुई अग्निरूपी अभ्यास की गति सारे ईंधनरूपी अज्ञान को भस्म करती है ॥ ४२ ॥

अरुणेनेव बोधेन, पूर्वसंतमसे, हृते ॥
ततं आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥
आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्तवदविद्यया ॥
तन्नाशे प्राप्तवद्भाति स्वकण्ठाभरणं यथा ॥४४॥

जैसे अरुण प्रथमें तम नाशत अस विज्ञानो ॥
फिरे आपहि प्रकटत आत्म आदित्य समाना ४२
नित प्राप्त आत्म विनप्राप्त अविद्यादूषण ॥
उसे नसत प्राप्त अस लसे जैसे निजगल भूषण ४४

पहले घोर अन्धकार के दूर करते अरुण (ललाई) की तरह ज्ञान से 'अज्ञान दूर होता है' फिर सूर्य की तरह आत्मा अपने आपही उदय होता है ॥ ४३ ॥ निरन्तर, रहता हुआ भी आत्मा अज्ञान से न रहने की बराबर है, और उस अज्ञान के दूर होते पहले ही से रहता हुआ सा मालूम होता है जैसे अपने गले का आभूषण ॥ ४४ ॥

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता ॥
जीवस्य तात्त्विकीरूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्त्तते ४५ ॥
तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमञ्जसा ॥
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ४६ ॥

भ्रम से कियं ब्रह्महि जीवं थुणु में नर सम ॥
देखत उस तत्त्वस्वरूप जीवं नाशत भ्रम ४५
निज तत्त्वरूप अनुभव से हो जो ज्ञाना ॥
दिगभ्रम इव शीघ्र हरत 'मैं', मम' अज्ञाना ४६

भ्रम से ठूंठ में मनुष्य की तरह ब्रह्म में जीवत्व किया गया है जीव का तत्त्व स्वरूप उस ब्रह्म के देखने से अज्ञान से हुआ जीवभाव दूर होजाता है ४५ अपना तत्त्वरूप जान लेने से उत्पन्न हुआ ज्ञान शीघ्रही 'मैं, मेरा' यह अज्ञान दूर करता है जैसे ज्ञान होने पर दिशा का भ्रम ॥ ४६ ॥

सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम्
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥
आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न विद्यते ॥
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

पूरन ज्ञानी योगी निजथित सब देखत ॥
अरु ज्ञानदृष्टि से सब इक आतमहि पेखत ॥४७॥
यह सब जग आत्माही है और न कोई ॥
निजआतम लखत सब जस घट मिट्टिहि सोई ४८

अच्छे प्रकार का ब्रह्मज्ञानी योगाभ्यास में लगा हुआ ज्ञानदृष्टि से अपनाही में सब को स्थित और सब एक आत्मा है ऐसा देखता है ॥ ४७ ॥ यह सब संसार आत्माही है आत्मा से अन्य कुछ नहीं है जैसे मिट्टी और घड़े आदि मिट्टी ही हैं ऐसे ही सबको अपनी आत्मा ही देखता है ॥ ४८ ॥

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ॥
सच्चिदानन्दरूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥
तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ॥
योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते ५०

ज्ञानी उपाधि गुण तजंत मुक्त हो ऐसे ॥
सतचित सुखरूपहि से क्रिमि मधुकर जैसे ॥४९॥
योगी तरि मोह जलधि हति राक्षस वृन्दा ॥
युत शान्तिहि आत्माराम लसंत निष्फन्दा ॥५०॥

और उस ब्रह्म को जाननेवाला पहले के नाम वर्ण आदि उपाधि और गुणों को छोड़ देवे सच्चिदानन्दरूप होने से जीताही हुआ मुक्तिरूप होजाता है जैसे कीड़ा भ्रमर ॥ ४९ ॥ योगाभ्यास करनेवाला मोहरूपी समुद्र को उतर राग द्वेष आदि राक्षसों को मार शान्ति से भरा हुआ अपनी आत्माही में आराम करता हुआ विराजमान होता है ॥ ५० ॥

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ।
घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वान्तरेव प्रकाशते ५१ ॥
उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ॥
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

तजि बाह्य असत सुखरति निजसुखहि बिलासत
अन्तरहि दीप घटथित इव बिमल प्रकासत ॥५१॥
नभइव उपाधि थित मुनि उस धर्म न रातो ॥
सर्वविद जड़ इव रहि बिरत चले जसवाता ॥५२॥

बाहर के झूठे सुखों का लगाव छोड़ आत्मसुख से युक्त अपने अंतर में ही घड़े में रक्खे दीपक की तरह साफ़ प्रकाशता है ॥ ५१ ॥ नाम वर्ण आदि उपाधियों में रहता हुआ भी मुनि उनके धर्मों से आकाश की तरह नहीं लिपटता है सब कुछ जानता हुआ भी अज्ञानी की तरह रहे और बिना लगाव वायु की तरह आचरण करे ॥ ५२ ॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः ॥
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ५३
यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ॥
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ५४ ॥

नाशत उपाधि मुनि ब्रह्महि मिलत अशेषहि
जलमें जल तेजहि तेज नभहि नभ जैसहि ॥ ५३ ॥
जेहि सुख दुख अपर न लाभ लाभ जेहि कोई ॥
जेहि ज्ञान न दूसर ज्ञान ब्रह्म भज सोई ॥ ५४ ॥

मनन करनेवाला उपाधियों के दूर होने से भगवान् में पूरी रीति से लीन होता है जैसे जल में जल आकाश में आकाश और अग्नि में अग्नि ॥ ५३ ॥ जिस आत्म-लाभ से अधिक दूसरा लाभ नहीं जिस सुख से अधिक दूसरा सुख नहीं जिस ज्ञान से अधिक दूसरा ज्ञान नहीं वही ब्रह्म है ऐसा विचार करे ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ॥
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ५५ ॥
तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

जेहि लखि न लखन कछु फिर न होव जेहि होई
जेहि जानि न जानन कछुक ब्रह्म भज सोई ५५
अध उपरि तिरीछे पूर्ण नित्य इक जोई ॥
सतचित सुख अद्वय नन्त ब्रह्म भज सोई ॥५६॥

जिस आत्मा को देखकर और देखना नहीं रहता व जिस आत्मरूप होजाने पर फिर होना नहीं होता व जिसका ज्ञान होने से और जानना नहीं रहता वही ब्रह्म है ऐसा विचार करे ॥ ५५ ॥ जो एक नित्य अनन्त अद्वितीय सच्चिदानन्द तिरछे ऊपर नीचे पूर्ण है वही ब्रह्म है ऐसा विचार करे ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽव्ययम् ॥
अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥
अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ॥
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः

इक सुख अखण्ड अव्यय 'श्रुति लक्षित जोई ॥
'वह नहिं इस आवृतिरूप' ब्रह्म भजे सोई ॥ ५७ ॥
आश्रित लव सुख सुखरूप अखण्डित ओहीं ॥
ब्रह्मादिक कक्षावार सुखी सब होहीं ॥ ५८ ॥

जो अविनाशी एक अखण्ड आनन्दरूप, बार बार नेति नेति रूप से वेदान्तद्वारा समझाया जाता है वही ब्रह्म है ऐसा विचार करे ॥ ५७ ॥ उस अखण्डआनन्दरूप परमात्मा के लवमात्र आनन्द का आसरा लेकर सब ब्रह्मा आदिक क्रम से अधिकाधिक आनन्दित होते हैं ॥ ५८ ॥

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ५९ ॥
अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ॥
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

उसयुत है वस्तु सकल उसयुत व्यवहारा ॥
इससे सबमें प्रभु जैसे घृतयुत पयसारा ॥ ५९ ॥
अज अव्यय ह्रस्व न दीर्घ थूल अणु नाहीं ॥
बिन रूप नाम गुण वर्ण ब्रह्म भज वाहीं ॥ ६० ॥

सारी वस्तु उस परमात्मा से मिली हुई है और सर्व व्यवहार में भी उसका मेल है इसलिये ब्रह्म सर्वत्र है जैसे सभी दूध में घी ॥ ५९ ॥ जो बहुत बारीक अणु नहीं है, स्थूल नहीं है, छोटा नहीं है, बड़ा नहीं है, न जन्म लेता है, न मरता है और रूप गुण वर्ण नाम आदि नहीं है वही ब्रह्म है ऐसा विचार करे ॥ ६० ॥

यत्रासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ॥
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६१ ॥
स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत् ॥
ब्रह्म प्रकाशते वह्निप्रतप्तायसपिण्डवत् ॥ ६२ ॥

जिसे भा भासित भान्वादि न भासित जोई ॥
जिसमे राजत यह सकल ब्रह्म भजे सोई ॥ ६१
प्रभु आप व्यापि सर्व जग बहिरन्तर भासंत ॥
जस लोहपिण्ड परितप्त हुताश प्रकासंत ॥ ६२ ॥

जिस परमात्मा के प्रकाश से सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं और जिसे सूर्य आदि के प्रकाश से वह नहीं प्रकाशित होता है जिससे यह सब संसार सुशोभित है वही ब्रह्म है ऐसा विचार करे ॥ ६१ ॥ परब्रह्म अपने आप भीतर बाहर व्याप कर सारे संसार को प्रकाशित करता हुआ जलते हुए अग्नि मे लोह के गोले की तरह प्रकाशित होता है ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न किञ्चन ॥
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ६३
दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् ॥
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ ६४ ॥

है ब्रह्म विलक्षण जग कछु अपर न होई ॥
जैसे मरु मरीचि है झूठ लखत कोई ॥ ६३ ॥
जो सुनिये देखिये ब्रह्म यँ वोहि होई ॥
इक ब्रह्म ज्ञान से वरु सत चित सुख सोई ॥ ६४ ॥

ब्रह्म संसार से विलक्षण है ब्रह्म से अन्य कुछ भी नहीं है यदि ब्रह्म से अन्य मालूम हो तो झूठ है जैसे निर्जल स्थान में जल की तरह सूर्य की किरण ॥ ६३ ॥ जो जो दिखलाई सुनाई पड़ता है वह ब्रह्म से अन्य नहीं होता है और वह तत्त्वज्ञान से अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है ॥ ६४ ॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ॥
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत् ॥ ६५ ॥
श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः ॥
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥ ६६ ॥

सर्वगत चिदात्म सतरूप ज्ञानदृग देखन ॥
जस अन्ध प्रकाशित रवि न कुमति दृग पेखत ६५
श्रवणादि प्रज्वलित जीव उज्वलित ज्ञानानल ॥
सवमल विमुक्त जस सोन स्वयं भासत भल ॥ ६६ ॥

ज्ञान दृष्टिवाला सच्चिदानन्द परमात्मा को सबमें रहता हुआ देखता है अज्ञान दृष्टिवाला नहीं देखता है जैसे अन्धा प्रकाश करते हुए सूर्य को ॥ ६५ ॥ वेदान्त श्रवण मनन आदि से जगाये हुए ज्ञानरूपी अग्नि से जले हुए सब मलीनताओं से छूटा हुआ जीव सोने की तरह अपने आप चमचमाता है ॥ ६६ ॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मबोधभानुस्तमोऽपहृत् ॥
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

प्रभु ज्ञानभानु उरनभ उगि,
तम हति भासत ॥
सब व्यापक सर्वाधार,
सर्वहिं परकासत ॥ ६७ ॥

आत्मा ज्ञानरूपी सूर्य है आकाशरूपी हृदय में उदय हो अन्धकाररूपी अज्ञान को दूर कर सबमें व्याप्त होकर सबको धारण करते व सबको प्रकाशित करते सुशोभित होता है ॥ ६७ ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखं निरञ्जनम् ॥

हरिगीतिका ॥

जो ज्ञान से बिनक्रियाँ अस,
नित चित विचारहिं लावहीं ।
दिशि देश कालादिक न देखत,
स्वात्म-तीरथ ध्यावहीं ॥

जो विचार त्यागी पुरुष स्थान समय आदि को बिना देखे शीत उष्ण आदि के दूर करनेवाले सबमें रहनेवाले माया-रहित नित्य आनन्दरूप अपने

यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः
स सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्य-
प्रणीत आत्मबोधः समाप्तः।

सर्वगत निरंजन नित्यसुख,
शीतादि जहँ नहिं आवहीं।
वेह सकलविद् सर्वगत विमुक्त है,
होवें पर पद पावहीं ॥ ६८ ॥

आत्मतीर्थ को सेवन करता है वेह सब कुछ जाननेवाला
सबमें रहता हुआ मुक्त होतो है ॥ ६८ ॥

एकोनविंशति शत द्विसतति सर सुधाकर वार ।
अरु कुहु असित आषाढ़ पूरित आत्मबोध उदार ॥
यहि अन्वयाङ्कित तिलक पद्य सुगद्य भाषाकार ।
किय सूर्यदीन प्रवीन जन पढ़ि लहहिं अतिसुखसार ॥

इति श्रीआत्मबोधे मनोरमा भाषाटीका समाप्ता ।